JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाएँ: श्रीलाल शुक्ल एवं शरद जोशी के व्यंग्य में

शोधार्थी :– गोपाल चन्द
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर।
शोध पर्यवेक्षक :– डॉ. राजबाला
(हिन्दी विभाग)
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर।

शोध–सारांश :– प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में "भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाएँ: श्रीलाल शुक्ल एवं शरद जोशी के व्यंग्य में" आधुनिक भारतीय समाज के उस वर्ग की मानसिकता, जीवन–शैली और अंतर्विरोधों का विश्लेषण करता है, जिसे मध्यवर्ग कहा जाता है। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन, लोकतांत्रिक संस्थाओं का विस्तार, नौकरशाही व्यवस्था, शिक्षा और उपभोक्तावाद के प्रसार ने मध्यवर्ग को भारतीय समाज की एक निर्णायक शक्ति बना दिया है। किंतु यह वर्ग निरंतर द्वंद्व, असुरक्षा, अवसरवाद और नैतिक समझौतों से ग्रस्त रहा है। इन विडंबनाओं को व्यंग्य के माध्यम से जिस गहनता और प्रभावशीलता से साहित्य में अभिव्यक्त किया गया है, वह इस शोध का केंद्रीय विषय है। हिंदी व्यंग्य परंपरा में श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य ग्रामीण और अर्ध–शहरी परिवेश में पनपते मध्यवर्ग की सत्ता–लोलुपता, अवसरवाद, नैतिक पतन और राजनीतिक–प्रशासनिक तंत्र से उसकी मिलीभगत को उजागर करता है। उनके साहित्य में मध्यवर्ग आदर्शों की बात करता हुआ व्यवहार में स्वार्थ, चतुराई और अनैतिकता को अपनाता दिखाई देता है।

वहीं शरद जोशी का व्यंग्य शहरी मध्यवर्ग की मानसिकता पर केंद्रित है, जहाँ सुविधाभोग, दिखावा, उपभोक्तावाद और तथाकथित आधुनिकता के पीछे छिपी खोखली सोच सामने आती है। उनके व्यंग्य में मध्यवर्ग अपनी सीमाओं और कमजोरियों से परिचित होते हुए भी परिवर्तन के प्रति उदासीन और यथास्थितिवादी बना रहता है। यह तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से दोनों रचनाकारों के व्यंग्य में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन की समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दोनों लेखक व्यंग्य को मात्र हास्य का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और आलोचना का प्रभावी माध्यम मानते हैं। उनके व्यंग्य में मध्यवर्ग एक ओर परिवर्तन का वाहक है, तो दूसरी ओर वही वर्ग सामाजिक विसंगतियों को बनाए रखने में भी सहायक बन जाता है। इस प्रकार यह शोध भारतीय मध्यवर्ग की जटिल और विरोधाभासी संरचना को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

मूलाक्षर :– भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक–आर्थिक संरचना, मध्यवर्गीय मानसिकता और आत्मविरोध, सत्ता, व्यवस्था और मध्यवर्ग का संबंध, नैतिकता बनाम सुविधा : मध्यवर्ग की विडंबना, भाषा, शैली और व्यंग्य–शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन, मध्यवर्गीय पाखंड और आत्मसंतोष, समकालीन भारतीय समाज में व्यंग्य की प्रासंगिकता।

प्रस्तावना :– भारतीय समाज की संरचना में मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है, जो संख्या, प्रभाव और वैचारिक भूमिका तीनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतांत्रिक व्यवस्था, शिक्षा के प्रसार, शहरीकरण, नौकरशाही तंत्र और आर्थिक अवसरों के विस्तार ने मध्यवर्ग को सामाजिक परिवर्तन की धुरी बना दिया। यह वर्ग एक ओर परंपरा और नैतिक मूल्यों की रक्षा का दावा करता है, तो दूसरी ओर आधुनिकता, सुविधा और स्वार्थ की ओर तीव्र आकृष्ट दिखाई देता है। यही द्वंद्व, यही अंतर्विरोध और यही आत्मसंघर्ष भारतीय मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विडंबना है।

साहित्य, विशेषतः व्यंग्य साहित्य, ने मध्यवर्ग की इन विडंबनाओं को अत्यंत सशक्त और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया है। हिंदी व्यंग्य परंपरा में श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने मध्यवर्गीय मानसिकता, आचरण और सामाजिक भूमिका को तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया। इन दोनों लेखकों का व्यंग्य मात्र हास्य उत्पन्न करने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज की गहरी विसंगतियों, नैतिक पतन और अवसरवादी प्रवृत्तियों पर गंभीर प्रहार करता है।

श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में मध्यवर्ग प्रायः सत्ता, राजनीति और प्रशासन के साथ गठजोड़ करता हुआ दिखाई देता है। आदर्शों की भाषा बोलने वाला यह वर्ग व्यवहार में स्वार्थ, चतुराई और अनैतिकता को अपनाता है। उनके व्यंग्य में मध्यवर्ग सामाजिक परिवर्तन का वाहक बनने के बजाय कई बार शोषण और भ्रष्ट व्यवस्था का मौन समर्थक बन जाता है। इसके विपरीत, शरद जोशी का व्यंग्य मुख्यतः शहरी मध्यवर्ग की मनोवृत्तियों पर केंद्रित है, जहाँ दिखावा, उपभोक्तावाद, नौकरीपेशा असुरक्षा और बौद्धिक खोखलेपन को तीखे कटाक्ष के साथ

प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी के व्यंग्य साहित्य के माध्यम से भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक, नैतिक और वैचारिक विडंबनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार व्यंग्य साहित्य मध्यवर्ग की आत्मछवि और वास्तविकता के बीच के अंतर को उजागर करता है तथा समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है। इस दृष्टि से यह शोध न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक अध्ययन के लिए भी प्रासंगिक है।

भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक–आर्थिक संरचना

भारतीय मध्यवर्ग स्वतंत्रता–पश्चात् सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की सबसे सशक्त और जटिल इकाई के रूप में उभरा है। यह वर्ग न तो पूर्णतः संपन्न है और न ही निर्धन यही स्थिति उसे निरंतर असुरक्षा, आकांक्षा और समझौतों की ओर ढकेलती है। औपनिवेशिक काल की नौकरशाही विरासत, स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था, शिक्षा के विस्तार और सीमित संसाधनों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने मध्यवर्ग की मानसिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। परिणामस्वरूप मध्यवर्ग एक ऐसे द्वंद्व में फँस गया, जहाँ आदर्श और व्यवहार, नैतिकता और अवसरवाद, तथा सत्ता–विरोध और सत्ता–लालसा साथ–साथ चलते हैं।

आर्थिक असुरक्षा मध्यवर्ग की मूल चिंता है। सीमित आय, महँगाई, नौकरी की अनिश्चितता और सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने का दबाव इन सबने मध्यवर्ग को सदैव भयग्रस्त बनाए रखा है। यह असुरक्षा उसे जोखिम लेने से रोकती है और सुरक्षित समझे जाने वाले रास्तों नौकरी, पद, सिफारिश और संपर्क की ओर उन्मुख करती है। इसी प्रक्रिया में मध्यवर्ग अक्सर व्यवस्था की खामियों से टकराने के बजाय उनसे समझौता कर लेता है। साहित्य में यह प्रवृत्ति व्यंग्य का प्रमुख विषय बनती है, क्योंकि यही वर्ग सार्वजनिक मंचों पर नैतिकता और ईमानदारी का समर्थन करता है, पर निजी जीवन में अवसर मिलने पर उन्हीं मूल्यों को ताक पर रख देता है।

सामाजिक महत्वाकांक्षा मध्यवर्ग की दूसरी प्रमुख विशेषता है। शिक्षा, शहरी जीवन–शैली, उपभोक्तावाद और तथाकथित **'सम्मान'** की चाह ने मध्यवर्ग को निरंतर ऊपर चढ़ने की दौड़ में शामिल कर दिया है। यह वर्ग अपनी सामाजिक हैसियत को प्रदर्शित करने के लिए भाषा, पहनावे, संबंधों और विचारों तक को साधन बना लेता है। इसी महत्वाकांक्षा के कारण मध्यवर्ग अपने से नीचे के वर्गों से दूरी बनाता है और ऊपर के वर्गों की नकल करता है। यह स्थिति एक कृत्रिम आत्मछवि का निर्माण करती है, जिसमें आत्मगौरव कम और दिखावा अधिक होता है। व्यंग्य साहित्य इस दिखावे को बेनकाब करता है और बताता है कि यह महत्वाकांक्षा अक्सर आत्मसम्मान नहीं, बल्कि आत्म–भ्रम पर टिकी होती है।

नैतिक द्वंद्व मध्यवर्ग की सबसे गहरी विडंबना है। एक ओर वह स्वयं को नैतिक मूल्यों ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, देशभक्ति का वाहक मानता है। दूसरी ओर व्यवहार में वही वर्ग भ्रष्टाचार, पक्षपात और अनैतिक समझौतों में संलग्न दिखाई देता है। यह द्वंद्व इसलिए भी तीव्र हो जाता है क्योंकि मध्यवर्ग स्वयं को व्यवस्था का पीड़ित भी मानता है और उसी व्यवस्था का लाभार्थी भी। इस आत्मविरोधी स्थिति में नैतिकता एक सैद्धांतिक आदर्श बनकर रह जाती है, जबकि व्यवहार अवसर के अनुसार बदलता रहता है। व्यंग्यकार इसी दोहरेपन को रेखांकित कर यह दिखाते हैं कि मध्यवर्ग का नैतिक क्रोध प्रायः भाषणों तक सीमित रहता है।

अवसरवाद मध्यवर्ग की सामाजिक–आर्थिक संरचना का स्वाभाविक परिणाम है। सीमित संसाधनों और तीव्र प्रतिस्पर्धा के बीच मध्यवर्ग 'सही' और 'गलत' के बजाय 'लाभ' और 'हानि' की भाषा में सोचने लगता है। सत्ता, प्रशासन और राजनीति के प्रति उसका रवैया विरोधात्मक कम और सामंजस्यपूर्ण अधिक होता है। अवसर मिलने पर वह सत्ता की आलोचना करता है, किंतु लाभ दिखते ही उसी सत्ता से समझौता करने में संकोच नहीं करता। यह अवसरवाद किसी एक व्यक्ति की कमजोरी नहीं, बल्कि पूरी सामाजिक संरचना का लक्षण बन जाता है।

इसी पृष्ठभूमि में श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का व्यंग्य विकसित होता है। स्वतंत्रता–पश्चात् भारतीय मध्यवर्ग सत्ता, व्यवस्था और नैतिकता के बीच जिस प्रकार झूलता रहा है, वही दोनों व्यंग्यकारों के साहित्य की मूल भूमि है। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ यह वर्ग सत्ता–तंत्र के साथ गहरे संबंध बनाकर अपनी असुरक्षा और महत्वाकांक्षा को साधता दिखाई देता है, जबकि शरद जोशी के यहाँ वही वर्ग शहरी जीवन में अपनी नैतिक दुविधाओं और अवसरवादी समझौतों के साथ हास्यास्पद बन जाता है। इस प्रकार भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक–आर्थिक संरचना आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक महत्वाकांक्षा, नैतिक द्वंद्व और अवसरवाद न केवल एक सामाजिक यथार्थ है, बल्कि व्यंग्य साहित्य का केंद्रीय विषय भी है। यह संरचना बताती है कि मध्यवर्ग न तो पूरी तरह दोषी है और न ही पूरी तरह निर्दोष वह परिस्थितियों से गढ़ा गया ऐसा वर्ग है, जिसकी विडंबनाएँ उसके समय और समाज की विडंबनाएँ भी हैं।

मध्यवर्गीय मानसिकता और आत्मविरोध

भारतीय मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विडंबना उसका दोहरा चरित्र है। यह वर्ग विचारों में आदर्शवादी और व्यवहार में समझौतावादी दिखाई देता है। नैतिकता, ईमानदारी, देशभक्ति, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों की बातें करना मध्यवर्ग की आत्मछवि का हिस्सा है, किंतु जब इन्हीं मूल्यों को अपने जीवन में अपनाने का प्रश्न आता है, तब यही वर्ग सुविधा, स्वार्थ और अवसर के अनुसार अपने सिद्धांतों में ढील देने लगता है। इस प्रकार मध्यवर्ग की मानसिकता एक निरंतर आत्मविरोध की स्थिति में जीती है, जहाँ वह स्वयं को सही भी ठहराता है और भीतर ही भीतर अपने समझौतों को लेकर अपराधबोध भी अनुभव करता है। मध्यवर्ग का यह आत्मविरोध उसकी सामाजिक स्थिति से उत्पन्न होता है। निचले वर्गों की तरह उसके पास खोने को कुछ भी नहीं है, ऐसी स्थिति नहीं होती और न ही उच्च वर्गों की तरह उसके पास सब कुछ सुरक्षित होता है। यही असुरक्षा उसे आदर्श और व्यवहार के बीच संतुलन साधने के नाम पर समझौतों की ओर ले जाती है। वह सार्वजनिक मंचों पर व्यवस्था की आलोचना करता है, भ्रष्टाचार को कोसता है और नैतिक पतन पर चिंता जताता है,

किंतु निजी जीवन में वही मध्यवर्ग सिफारिश, पहचान और 'जुगाड़' को व्यावहारिक बुद्धिमत्ता मान लेता है। यह दोहरापन ही व्यंग्यकारों के लिए सबसे उर्वर भूमि बनता है।

श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में मध्यवर्गीय मानसिकता का यह आत्मविरोध सत्ता–तंत्र से समझौते के रूप में उभरता है। उनके यहाँ मध्यवर्ग स्वयं को व्यवस्था का शिकार बताता है, लेकिन अवसर मिलते ही उसी व्यवस्था का हिस्सा बनने में संकोच नहीं करता। वह सत्ता की भाषा, चालाकियों और नैतिक शून्यता को पहचानता है, फिर भी अपने हित में उसी सत्ता से तालमेल बैठा लेता है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में मध्यवर्ग का यह चरित्र विशेष रूप से इसलिए प्रभावी है क्योंकि वह स्वयं को दोषी नहीं मानता वह अपने समझौतों को **'व्यावहारिकता', 'समय की माँग' या 'मजबूरी'** कहकर ठहराता है। इस प्रकार उसका आत्मविरोध एक सुसंगत तर्क में बदल जाता है, जहाँ नैतिकता केवल भाषणों और आदर्शों तक सीमित रह जाती है।

श्रीलाल शुक्ल के यहाँ मध्यवर्ग की मानसिकता सत्ता के निकट जाकर स्वयं को सुरक्षित करने की आकांक्षा से संचालित होती है। वह जानता है कि व्यवस्था भ्रष्ट है, फिर भी उससे दूरी बनाए रखना उसे जोखिमपूर्ण लगता है। इसलिए वह आलोचक भी बनता है और सहभागी भी। यही स्थिति उसके चरित्र को हास्यास्पद नहीं, बल्कि त्रासद बना देती है। व्यंग्य यहाँ केवल हँसाने का साधन नहीं रहता, बल्कि यह दिखाता है कि किस प्रकार मध्यवर्ग अपनी आत्मा के साथ धीरे–धीरे समझौता करता चला जाता है।

इसके विपरीत शरद जोशी के व्यंग्य में मध्यवर्गीय आत्मविरोध अधिक सूक्ष्म, रोजमर्रा और घरेलू स्तर पर दिखाई देता है। उनके यहाँ सत्ता कोई दूर की अमूर्त शक्ति नहीं, बल्कि कार्यालय, परिवार, समाज और व्यक्तिगत संबंधों में मौजूद होती है। शरद जोशी का मध्यवर्ग नैतिक गिरावट को बड़े अपराध की तरह नहीं, बल्कि छोटी–छोटी सुविधाओं और चालाकियों के रूप में स्वीकार करता है। झूठ बोलना, नियम तोड़ना, दूसरों को दोष देना और स्वयं को सही साबित करना यह सब उसके दैनिक जीवन का हिस्सा बन जाता है।

शरद जोशी के व्यंग्य में आत्म–छल (Self-Deception) मध्यवर्ग की प्रमुख विशेषता है। वह जानता है कि जो वह कर रहा है, वह गलत है, फिर भी वह अपने मन को यह समझा लेता है कि **"सब ऐसा ही करते हैं"** या **"इस व्यवस्था में ईमानदार रहकर कुछ नहीं हो सकता।"** इस प्रकार उसका आत्मविरोध किसी बाहरी दबाव से नहीं, बल्कि उसके भीतर से जन्म लेता है। शरद जोशी इस मानसिकता को तीखे, लेकिन सहज हास्य के माध्यम से उजागर करते हैं, जिससे पाठक हँसते–हँसते स्वयं को पहचानने लगता है। यहाँ आदर्शों की बातें एक सामाजिक मुखौटा बन जाती हैं। मध्यवर्ग अपने बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाता है, समाज में आदर्श नागरिक बनने का दावा करता है, लेकिन स्वयं अपने लाभ के लिए उन्हीं आदर्शों को तोड़ देता है। शरद जोशी का व्यंग्य इसी विरोधाभास को इतनी सरलता से प्रस्तुत करता है कि पाठक को महसूस होता है। यह किसी और की नहीं, बल्कि हमारी ही कहानी है।

इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी दोनों के यहाँ मध्यवर्गीय मानसिकता और आत्मविरोध समान मूल से जन्म लेते हैं, किंतु उनके रूप भिन्न हैं। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ यह आत्मविरोध सत्ता–तंत्र से खुले या छिपे समझौते के रूप में सामने आता है, जबकि शरद जोशी के यहाँ यह रोजमर्रा की नैतिक गिरावट, आत्म–छल और सुविधाजन्य समझौतों में प्रकट होता है। दोनों ही व्यंग्यकार यह स्पष्ट करते हैं कि मध्यवर्ग की विडंबना उसकी बाहरी परिस्थितियों से अधिक उसकी मानसिकता में निहित है। अतः मध्यवर्गीय आत्मविरोध केवल एक साहित्यिक विषय नहीं, बल्कि भारतीय समाज का गहन यथार्थ है। व्यंग्य साहित्य इस यथार्थ को उजागर कर न केवल समाज की आलोचना करता है, बल्कि मध्यवर्ग को स्वयं से प्रश्न करने के लिए विवश भी करता है। यही इस व्यंग्य की सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि है।

सत्ता, व्यवस्था और मध्यवर्ग का संबंध

भारतीय समाज में सत्ता, व्यवस्था और मध्यवर्ग का संबंध अत्यंत जटिल, द्वंद्वात्मक और विरोधाभासी रहा है। यह संबंध केवल शासक और शासित का नहीं, बल्कि सहयोग, समझौते, मौन स्वीकृति और अवसरवाद का भी है। इसी कारण यह विषय शोध–पत्र का केन्द्रीय स्तंभ बनता है, क्योंकि सत्ता–तंत्र की वास्तविक क्रियाशीलता को समझे बिना मध्यवर्ग की मानसिकता और उसकी विडंबनाओं का सम्यक् विश्लेषण संभव नहीं है। हिंदी व्यंग्य साहित्य में सत्ता और व्यवस्था के साथ मध्यवर्ग के इस अंतर्संबंध को सबसे तीखे रूप में श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी ने प्रस्तुत किया है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय लोकतंत्र में सत्ता का स्वरूप बदला, किंतु सत्ता–तंत्र की मानसिकता में औपनिवेशिक विरासत, लालफीताशाही और भ्रष्ट प्रवृत्तियाँ बनी रहीं। इस व्यवस्था में मध्यवर्ग एक ऐसे वर्ग के रूप में उभरा, जो न तो सत्ता के शीर्ष पर था और न ही पूर्णतः हाशिए पर। यही **'बीच की स्थिति'** उसे सत्ता का आलोचक भी बनाती है और उसी सत्ता का लाभार्थी भी। मध्यवर्ग व्यवस्था की कमियों को पहचानता है, उनसे पीड़ित भी होता है, किंतु साथ ही उन्हीं कमियों से अपने लिए रास्ते भी निकाल लेता है। यही द्वंद्व व्यंग्य का मूल आधार बनता है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में मध्यवर्ग सत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था का मूक साझेदार बनकर सामने आता है। उनके साहित्य में सत्ता केवल राजनीतिक नेतृत्व तक सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रशासन, नौकरशाही और स्थानीय प्रभुत्वशाली संरचनाओं तक विस्तृत हो जाती है। मध्यवर्ग इस तंत्र की आलोचना तो करता है, लेकिन उसका प्रतिरोध नहीं करता। कारण स्पष्ट है सत्ता से दूरी उसे असुरक्षित करती है, जबकि निकटता उसे संरक्षण, सुविधा और अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार वह प्रशासनिक भ्रष्टाचार और राजनीतिक अवसरवाद का मौन समर्थक बन जाता है। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ मध्यवर्ग का यह मूक सहयोग अत्यंत व्यंग्यात्मक ढंग से उभरता है। वह स्वयं को भ्रष्ट नहीं मानता, बल्कि यह तर्क देता है कि **"व्यवस्था ही ऐसी है"** या **"यदि हम नहीं करेंगे, तो कोई और कर लेगा।"** इस मानसिकता में

मध्यवर्ग सत्ता के अत्याचारों का प्रत्यक्ष विरोध करने के बजाय उनसे समझौता कर लेता है। यही कारण है कि सत्ता–तंत्र को टिकाए रखने में उसकी भूमिका निर्णायक बन जाती है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य इस तथ्य को उजागर करता है कि सत्ता की निरंकुशता केवल शासकों की देन नहीं, बल्कि उन लोगों की भी देन है, जो लाभ के बदले चुप्पी साध लेते हैं।

इसके विपरीत, शरद जोशी के व्यंग्य में सत्ता और व्यवस्था का स्वरूप अपेक्षाकृत **सूक्ष्म और रोजमर्रा** के जीवन से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। उनके यहाँ सत्ता किसी दूरस्थ राजनीतिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि कार्यालय, नियम–कानून, सामाजिक दबाव और संस्थागत व्यवहार के रूप में मौजूद रहती है। शरद जोशी मध्यवर्ग को एक साथ व्यवस्था का पीड़ित भी और पोषक भी सिद्ध करते हैं। उनका मध्यवर्ग भ्रष्ट व्यवस्था से परेशान है, लाइन में खड़ा रहना, फाइलों का अटकना, नियमों की जटिलता यह सब उसके जीवन का हिस्सा है। वह इन सब पर व्यंग्य करता है, शिकायत करता है और व्यवस्था को कोसता है।

लेकिन यही मध्यवर्ग जब अवसर पाता है, तो वही नियम तोड़ता है, वही सिफारिश खोजता है और वही रास्ते अपनाता है, जिनकी वह आलोचना करता रहा है। इस प्रकार वह व्यवस्था का केवल शिकार नहीं रहता, बल्कि उसका पोषण भी करता है। शरद जोशी के व्यंग्य में यह स्थिति अत्यंत मार्मिक है, क्योंकि यहाँ मध्यवर्ग को दोषी ठहराने के बजाय उसकी मानसिक मजबूरियों को उजागर किया जाता है। वह जानता है कि व्यवस्था गलत है, फिर भी वह स्वयं को यह समझा लेता है कि **"इस व्यवस्था में ईमानदारी संभव नहीं।"** शरद जोशी का व्यंग्य सत्ता और मध्यवर्ग के संबंध को नैतिक स्तर पर प्रश्नांकित करता है। उनका व्यंग्य यह बताता है कि व्यवस्था की विकृतियाँ केवल ऊपर से थोपी हुई नहीं हैं, बल्कि नीचे से स्वीकार की गई हैं। मध्यवर्ग अपने छोटे–छोटे लाभों के लिए बड़े सिद्धांतों का त्याग कर देता है और इस प्रक्रिया में सत्ता को वैधता प्रदान करता है। यही आत्मविरोध और यही नैतिक समझौता व्यवस्था को जीवित रखता है।

यदि दोनों व्यंग्यकारों की दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि श्रीलाल शुक्ल सत्ता–तंत्र के साथ मध्यवर्ग के संगठित और संरचनात्मक संबंध को उजागर करते हैं, जबकि शरद जोशी उसके मनोवैज्ञानिक और नैतिक पक्ष को सामने लाते हैं। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ मध्यवर्ग सत्ता का मूक साझेदार है, वहीं शरद जोशी के यहाँ वह अनजाने में सत्ता का पोषक बन जाता है। दोनों ही स्थितियों में मध्यवर्ग व्यवस्था के परिवर्तन की संभावना को कमजोर करता है। इस प्रकार सत्ता, व्यवस्था और मध्यवर्ग का संबंध भारतीय समाज की सबसे बड़ी विडंबनाओं में से एक है। यह संबंध यह स्पष्ट करता है कि मध्यवर्ग न तो केवल शोषित है और न ही पूर्णतः शोषक, बल्कि वह दोनों भूमिकाओं के बीच झूलता हुआ एक ऐसा वर्ग है, जिसकी चुप्पी, समझौते और अवसरवाद सत्ता को स्थायित्व प्रदान करते हैं। व्यंग्य साहित्य इस सच्चाई को उजागर कर न केवल सत्ता की आलोचना करता है, बल्कि मध्यवर्ग को उसकी जिम्मेदारी का बोध भी कराता है। यही इस विषय की शोधात्मक और सामाजिक प्रासंगिकता है।

नैतिकता बनाम सुविधा : मध्यवर्ग की विडंबना

भारतीय मध्यवर्ग की सबसे गहरी और स्थायी विडंबना नैतिकता और सुविधा के बीच का संघर्ष है। यह वर्ग नैतिक मूल्यों का सबसे मुखर समर्थक दिखाई देता है ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रभक्ति जैसे आदर्श उसके भाषणों, विचारों और आत्मछवि का हिस्सा हैं। किंतु व्यवहार के स्तर पर यही मध्यवर्ग सुविधा, लाभ और सुरक्षित भविष्य के लिए उन्हीं मूल्यों से समझौता करता हुआ दिखता है। यही अंतर्विरोध भारतीय मध्यवर्ग को न केवल सामाजिक रूप से जटिल बनाता है, बल्कि व्यंग्य साहित्य का केंद्रीय विषय भी बनाता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में मध्यवर्ग ने स्वयं को **"नैतिक चेतना का वाहक"** मान लिया। वह स्वयं को न तो शोषक वर्ग में गिनता है और न ही शोषित वर्ग में, बल्कि स्वयं को एक जिम्मेदार, शिक्षित और विवेकशील वर्ग के रूप में प्रस्तुत करता है। परंतु आर्थिक असुरक्षा, सीमित अवसर, सामाजिक प्रतिस्पर्धा और प्रतिष्ठा का दबाव इस नैतिकता को धीरे–धीरे कमजोर कर देता है। परिणामस्वरूप मध्यवर्ग के लिए नैतिकता एक सैद्धांतिक आदर्श बन जाती है, जबकि सुविधा उसका व्यावहारिक धर्म।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में नैतिकता बनाम सुविधा का द्वंद्व सत्ता और प्रशासनिक तंत्र के संदर्भ में सामने आता है। उनके यहाँ मध्यवर्ग जानता है कि भ्रष्टाचार, पक्षपात और सत्ता का दुरुपयोग नैतिक रूप से गलत है, फिर भी वह उससे दूरी नहीं बनाता। कारण स्पष्ट है नैतिक बने रहना उसे असुरक्षित कर सकता है, जबकि सुविधा उसे संरक्षण देती है। इस प्रकार वह नैतिक विरोध की जगह व्यवहारिक चुप्पी को चुन लेता है। श्रीलाल शुक्ल के पात्र अकसर यह तर्क देते दिखाई देते हैं कि "व्यवस्था ही ऐसी है" या "ईमानदारी से कुछ नहीं होता।" यह तर्क नैतिकता को निष्क्रिय और सुविधा को वैध बना देता है। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ मध्यवर्ग की विडंबना यह है कि वह स्वयं को नैतिक मानते हुए भी सत्ता के नैतिक पतन में सहभागी बन जाता है। वह भ्रष्ट नहीं कहलाना चाहता, पर भ्रष्ट व्यवस्था से मिलने वाले लाभ भी छोड़ना नहीं चाहता। इसीलिए उसका नैतिकता–बोध चयनात्मक हो जाता है। वह दूसरों के भ्रष्टाचार पर तीखी टिप्पणी करता है, लेकिन अपने छोटे–छोटे समझौतों को **"मजबूरी"** कहकर सही ठहराता है। व्यंग्य यहाँ यह दिखाता है कि सुविधा के पक्ष में लिया गया हर छोटा निर्णय अंततः नैतिकता की सामूहिक हार बन जाता है।

वहीं शरद जोशी के व्यंग्य में नैतिकता बनाम सुविधा का संघर्ष अधिक निजी, सूक्ष्म और दैनिक जीवन से जुड़ा हुआ है। उनके यहाँ मध्यवर्ग कोई बड़ा अनैतिक कृत्य नहीं करता, बल्कि छोटी–छोटी सुविधाओं के लिए नैतिक सीमाओं को लाँघता है। नियम तोड़ना, लाइन में आगे निकल जाना, झूठी सफारिश का सहारा लेना या अपनी गलती का दोष दूसरों पर डाल देना ये सब उसके जीवन के सामान्य हिस्से बन जाते हैं। शरद जोशी इस स्थिति को अत्यंत सहज हास्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह विडंबना और भी तीखी हो जाती है।

शरद जोशी के मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विशेषता उसका आत्म–छल है। वह स्वयं को समझा लेता है कि जो वह कर रहा है, वह अनैतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक है। "सब ऐसा ही करते हैं" या "इस सिस्टम में यही तरीका है"। जैसे वाक्य नैतिकता के विरुद्ध सुविधा को सही ठहराने के औजार बन जाते हैं। इस प्रकार नैतिकता किसी कठोर सिद्धांत की बजाय एक लचीली अवधारणा बन जाती है, जिसे परिस्थिति के अनुसार मोड़ा जा सकता है। व्यंग्यकार यहाँ यह दिखाते हैं कि सुविधा का यह तर्क अंततः व्यक्ति को नैतिक रूप से खोखला बना देता है। मध्यवर्ग की यह विडंबना इसलिए भी गंभीर है क्योंकि वह स्वयं को समाज का मार्गदर्शक मानता है। वह बच्चों को नैतिक शिक्षा देता है, समाज में मूल्यों की बात करता है और व्यवस्था की आलोचना करता है। किंतु जब वही मध्यवर्ग अपने जीवन में सुविधा के लिए नैतिकता से समझौता करता है, तो यह केवल व्यक्तिगत विफलता नहीं रहती, बल्कि सामाजिक संकट बन जाती है। व्यंग्य साहित्य इसी पाखंड को उजागर करता है, जहाँ **नैतिकता एक भाषण** है और **सुविधा एक जीवन–पद्धति।**

यदि दोनों व्यंग्यकारों की तुलना की जाए, तो स्पष्ट होता है कि श्रीलाल शुक्ल नैतिकता बनाम सुविधा के संघर्ष को संरचनात्मक और सत्ता–केंद्रित रूप में प्रस्तुत करते हैं, जबकि शरद जोशी उसे मनोवैज्ञानिक और रोजमर्रा के स्तर पर उभारते हैं। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ सुविधा सत्ता से निकटता में है, तो शरद जोशी के यहाँ सुविधा जीवन की छोटी सहजताओं में। दोनों ही स्थितियों में नैतिकता पीछे छूटती जाती है और सुविधा आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार नैतिकता बनाम सुविधा का द्वंद्व भारतीय मध्यवर्ग की केंद्रीय विडंबना है। यह द्वंद्व बताता है कि मध्यवर्ग न तो पूर्णतः नैतिक है और न ही पूर्णतः अनैतिक बल्कि वह परिस्थितियों से संचालित एक ऐसा वर्ग है, जो सुविधा के नाम पर नैतिकता को टालता रहता है। व्यंग्य साहित्य इस प्रवृत्ति को उजागर कर मध्यवर्ग को आईना दिखाता है और उसे यह सोचने पर विवश करता है कि यदि नैतिकता केवल विचारों तक सीमित रह जाए, तो समाज का भविष्य क्या होगा। यही इस व्यंग्य की सबसे बड़ी सामाजिक सार्थकता है।

भाषा, शैली और व्यंग्य–शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

हिंदी व्यंग्य साहित्य में भाषा, शैली और व्यंग्य–शिल्प केवल अभिव्यक्ति के साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को उजागर करने के प्रभावी औजार भी हैं। भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाएँ जिस गहराई और व्यापकता से श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी के साहित्य में उभरती हैं, उसका प्रमुख कारण उनकी विशिष्ट भाषा–शैली और सशक्त व्यंग्य–शिल्प है। दोनों व्यंग्यकारों का उद्देश्य समान होते हुए भी उनकी अभिव्यक्ति–पद्धति भिन्न है, और यही भिन्नता उनके व्यंग्य को बहुआयामी बनाती है।

श्रीलाल शुक्ल की भाषा में लोक–जीवन की गंध स्पष्ट रूप से महसूस होती है। उनकी भाषा ग्रामीण, अर्ध–शहरी और प्रशासनिक शब्दावली का सजीव मिश्रण है। वे तत्सम, तद्भव और बोलचाल की भाषा को इस कुशलता से संयोजित करते हैं कि व्यंग्य स्वाभाविक और प्रामाणिक प्रतीत होता है। उनकी भाषा में कहीं–कहीं जानबूझकर जटिलता दिखाई देती है, जो सत्ता–तंत्र और नौकरशाही की जटिल संरचना का प्रतीक बन जाती है। यह जटिलता पाठक को हँसाने के साथ–साथ सोचने के लिए बाध्य करती है। उनके व्यंग्य में भाषा स्वयं व्यवस्था की विडंबना का आईना बन जाती है।

इसके विपरीत, शरद जोशी की भाषा अपेक्षाकृत सरल, सहज और शहरी मध्यवर्ग की बोलचाल के अधिक निकट है। उनकी भाषा में अनावश्यक क्लिष्टता नहीं है, बल्कि वह सामान्य जीवन के अनुभवों से उपजी हुई है। यही सरलता उनके व्यंग्य को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाती है। शरद जोशी की भाषा में हास्य एकदम सतह पर दिखाई देता है, किंतु उसके नीचे गहरी सामाजिक आलोचना छिपी रहती है। उनकी शैली में संवादात्मकता और आत्मीयता अधिक है, जिससे पाठक स्वयं को व्यंग्य का पात्र महसूस करने लगता है।

शैली के स्तर पर श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य अपेक्षाकृत विस्तृत, वर्णनात्मक और संरचनात्मक है। वे पूरे सामाजिक और प्रशासनिक तंत्र को एक बड़े फ्रेम में प्रस्तुत करते हैं। उनके व्यंग्य में पात्र केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि एक पूरी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी शैली में व्यंग्य धीरे–धीरे विकसित होता है और अंततः तीखे प्रहार के रूप में सामने आता है। यह शैली पाठक से धैर्य और गंभीरता की माँग करती है, किंतु बदले में उसे गहन सामाजिक बोध प्रदान करती है।

इसके विपरीत, शरद जोशी की शैली संक्षिप्त, तीक्ष्ण और क्षणिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली है। वे छोटी घटनाओं, साधारण परिस्थितियों और दैनिक जीवन की मामूली लगने वाली बातों के माध्यम से बड़े सत्य को उजागर करते हैं। उनकी शैली में व्यंग्य अचानक आता है और सीधे पाठक की चेतना पर प्रहार करता है। यही कारण है कि शरद जोशी का व्यंग्य अधिक तात्कालिक और चुभने वाला लगता है। वह हँसी के माध्यम से पाठक को असहज कर देता है। व्यंग्य–शिल्प की दृष्टि से श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य व्यवस्थागत और विघटनात्मक है। वे सत्ता, राजनीति और प्रशासन की संरचना को भीतर से खोलकर दिखाते हैं। उनके यहाँ व्यंग्य केवल कथ्य में नहीं, बल्कि पात्रों की भाषा, परिस्थितियों और घटनाओं की रचना में निहित होता है। वे अतिशयोक्ति, विडंबना और प्रतीकात्मकता का प्रयोग कर यह दिखाते हैं कि मध्यवर्ग किस प्रकार सत्ता का मूक साझेदार बन जाता है। उनका व्यंग्य पाठक को यह एहसास कराता है कि समस्या केवल व्यक्तियों में नहीं, बल्कि पूरी संरचना में है।

शरद जोशी का व्यंग्य–शिल्प अधिक मनोवैज्ञानिक और आत्म–उद्घाटनकारी है। वे मध्यवर्ग की मानसिकता, आत्म–छल और नैतिक समझौतों को उजागर करने के लिए हल्की–सी अतिशयोक्ति, तीखे संवाद और व्यावहारिक उदाहरणों का सहारा लेते हैं। उनका व्यंग्य अक्सर किसी साधारण वाक्य या स्थिति से शुरू होकर अचानक एक गहरे सामाजिक सत्य तक पहुँच जाता है। यह शिल्प पाठक को हँसाते हुए स्वयं से प्रश्न करने के लिए विवश करता है।

दोनों व्यंग्यकारों में एक महत्वपूर्ण समानता यह है कि वे व्यंग्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं मानते। उनके लिए व्यंग्य एक सामाजिक हस्तक्षेप है। किंतु जहाँ श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य पाठक को व्यवस्था के विरुद्ध सजग करता है, वहीं शरद जोशी का व्यंग्य पाठक को स्वयं के विरुद्ध खड़ा कर देता है। यह अंतर उनकी भाषा और शैली से सीधे जुड़ा हुआ है। इस प्रकार भाषा, शैली और व्यंग्य–शिल्प के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य अधिक व्यापक, गंभीर और संरचनात्मक है, जबकि शरद जोशी का व्यंग्य सरल, तीक्ष्ण और मनोवैज्ञानिक है। दोनों की भिन्न अभिव्यक्ति–पद्धतियाँ मिलकर भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाओं को एक समग्र रूप में प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि इन दोनों व्यंग्यकारों का साहित्य न केवल हिंदी व्यंग्य की परंपरा को समृद्ध करता है, बल्कि भारतीय समाज को आत्मावलोकन का अवसर भी प्रदान करता है।

मध्यवर्गीय पाखंड और आत्मसंतोष

भारतीय मध्यवर्ग की सामाजिक पहचान का एक प्रमुख और जटिल पक्ष पाखंड और आत्मसंतोष है। यह वर्ग स्वयं को नैतिक, शिक्षित, विवेकशील और समाज का मार्गदर्शक मानता है, किंतु उसका आचरण प्रायः इन दावों के विपरीत दिखाई देता है। मध्यवर्ग की यही प्रवृत्ति ऊँचे आदर्शों की घोषणा और निम्न स्तर के व्यवहार का चयन उसके पाखंड को जन्म देती है। इस पाखंड को वह जिस सहजता से स्वीकार कर लेता है, वही उसका आत्मसंतोष है। हिंदी व्यंग्य साहित्य में इस प्रवृत्ति को जिस तीक्ष्णता से उभारा गया है, वह श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी के साहित्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

मध्यवर्गीय पाखंड का मूल उसकी दोहरी आत्मछवि में निहित है। एक ओर वह स्वयं को ईमानदारी, नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी का प्रतीक मानता है, दूसरी ओर व्यवहार में वही वर्ग सुविधा, स्वार्थ और व्यक्तिगत लाभ को प्राथमिकता देता है। वह भ्रष्टाचार, अनैतिकता और सत्ता के दुरुपयोग की आलोचना करता है, लेकिन जब वही परिस्थितियाँ उसके सामने आती हैं, तो वह अपने सिद्धांतों को **'व्यावहारिकता'** के नाम पर त्याग देता है। इस विरोधाभास के बावजूद मध्यवर्ग आत्मग्लानि से ग्रस्त नहीं होता, बल्कि अपने कर्मों को उचित ठहराकर आत्मसंतोष प्राप्त कर लेता है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में यह पाखंड सत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था के संदर्भ में अधिक व्यापक और संरचनात्मक रूप में सामने आता है। उनके यहाँ मध्यवर्ग स्वयं को व्यवस्था का पीड़ित बताता है, किंतु भीतर ही भीतर उसी व्यवस्था का समर्थक और लाभार्थी बना रहता है। वह भ्रष्ट तंत्र को कोसता है, पर उससे मिलने वाले लाभों को छोड़ने को तैयार नहीं होता। इस स्थिति में उसका पाखंड केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक बन जाता है। श्रीलाल शुक्ल के पात्र अपने नैतिक समझौतों को **'समय की मजबूरी'** या **'व्यवस्था की सच्चाई'** कहकर स्वीकार कर लेते हैं। यही तर्क उन्हें आत्मसंतोष प्रदान करता है। एक ऐसा आत्मसंतोष, जो आत्मालोचना के स्थान पर आत्मरक्षा का माध्यम बन जाता है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में मध्यवर्गीय आत्मसंतोष विशेष रूप से खतरनाक इसलिए है, क्योंकि वह परिवर्तन की संभावना को ही समाप्त कर देता है। जब व्यक्ति यह मान लेता है कि वह परिस्थितियों के अनुसार जो कर रहा है, वही सही है, तो सुधार की आवश्यकता ही नहीं बचती। इस प्रकार पाखंड एक स्थायी मानसिक अवस्था बन जाता है। व्यंग्यकार इस स्थिति को उजागर कर यह दिखाते हैं कि सत्ता केवल ऊपर से थोपी हुई शक्ति नहीं है, बल्कि मध्यवर्ग के आत्मसंतोष से पोषित एक व्यवस्था है।

दूसरी ओर, शरद जोशी के व्यंग्य में मध्यवर्गीय पाखंड अधिक सूक्ष्म, व्यक्तिगत और रोजमर्रा के जीवन से जुड़ा हुआ है। उनके यहाँ मध्यवर्ग कोई बड़ा नैतिक अपराध नहीं करता, बल्कि छोटे–छोटे पाखंडों में लिप्त रहता है। वह स्वयं को ईमानदार मानते हुए छोटी बेईमानियों को नजरअंदाज करता है। वह दूसरों की गलतियों पर तीखी टिप्पणी करता है, पर अपनी गलतियों को परिस्थितिजन्य बता कर टाल देता है। यही प्रवृत्ति उसे आत्मसंतोष प्रदान करती है। एक ऐसा संतोष, जो उसे यह विश्वास दिलाता है कि वह दूसरों से बेहतर है।

शरद जोशी का मध्यवर्ग आत्म–छल में जीता है। वह स्वयं से झूठ बोलता है और उसी झूठ को सच मानकर संतुष्ट हो जाता **है। "मैं तो मजबूर था", "मेरे अलावा सब ऐसे ही हैं", "इससे बड़ा पाप तो कुछ और है"** जैसे तर्क उसके पाखंड को वैधता प्रदान करते हैं। शरद जोशी इस मानसिकता को हास्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, किंतु यह हास्य भीतर से गहरी चोट करता है। पाठक हँसते हुए यह महसूस करता है कि व्यंग्य का लक्ष्य कोई और नहीं, वह स्वयं है। मध्यवर्गीय पाखंड का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका नैतिक उपदेशवाद है। मध्यवर्ग समाज को नैतिकता का पाठ पढ़ाने में कभी पीछे नहीं रहता चाहे वह परिवार हो, शिक्षा हो या सार्वजनिक जीवन। किंतु जब वही नैतिकता उसके अपने आचरण पर लागू होने की बात आती है, तो वह उसे लचीला बना देता है। यह चयनात्मक नैतिकता आत्मसंतोष को और मजबूत करती है, क्योंकि व्यक्ति स्वयं को दोषी मानने के बजाय स्वयं को अपवाद मान लेता है।

यदि श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी के दृष्टिकोण की तुलना की जाए, तो स्पष्ट होता है कि श्रीलाल शुक्ल मध्यवर्गीय पाखंड को सत्ता–संरचना से जुड़ी सामाजिक प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं, जबकि शरद जोशी उसे व्यक्ति की मानसिक आदत के रूप में उभारते हैं। दोनों ही स्थितियों में आत्मसंतोष उस पाखंड को स्थायित्व प्रदान करता है। एक में यह व्यवस्था को चलाने का औजार बनता है, तो दूसरे में व्यक्ति को आत्मालोचना से बचाने का साधन। इस प्रकार मध्यवर्गीय पाखंड और आत्मसंतोष भारतीय समाज की एक गहरी विडंबना है। यह विडंबना बताती है कि समस्या केवल बाहरी परिस्थितियों में नहीं, बल्कि व्यक्ति की मानसिकता में भी निहित है। व्यंग्य साहित्य इस मानसिकता को उजागर कर मध्यवर्ग को उसका वास्तविक चेहरा दिखाता है। यही व्यंग्य की सबसे बड़ी सामाजिक भूमिका है वह हँसाते हुए असहज करता है और आत्मसंतोष की नींद में सोए समाज को झकझोरता है।

समकालीन भारतीय समाज में व्यंग्य की प्रासंगिकता

समकालीन भारतीय समाज अनेक अंतर्विरोधों, असमानताओं और तेजी से बदलती सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों से गुजर रहा है। लोकतंत्र, तकनीक, उपभोक्तावाद, मीडिया और वैश्वीकरण ने समाज को नई दिशा दी है, किंतु साथ ही नई विडंबनाएँ भी उत्पन्न की हैं। ऐसे समय में व्यंग्य केवल साहित्यिक विधा नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक चेतना और आलोचना का सशक्त माध्यम बन जाता है। विशेष रूप से भारतीय मध्यवर्ग की मानसिकता, आचरण और भूमिका को समझने के लिए व्यंग्य की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। इस संदर्भ में श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का व्यंग्य साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना अपने रचनाकाल में था।

समकालीन समाज में मध्यवर्ग स्वयं को परिवर्तन का वाहक मानता है, किंतु व्यवहार में वह अनेक सामाजिक बुराइयों का मौन समर्थक भी बन जाता है। भ्रष्टाचार, राजनीतिक अवसरवाद, नैतिक समझौते, उपभोक्तावादी दिखावा और आत्मसंतोष ये सभी प्रवृत्तियाँ आज भी उतनी ही सक्रिय हैं। व्यंग्य इन प्रवृत्तियों को सीधे उपदेश के माध्यम से नहीं, बल्कि हास्य, विडंबना और तीखे कटाक्ष के जरिए उजागर करता है। यही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। व्यंग्य पाठक को हँसाते हुए असहज करता है और उसे स्वयं से प्रश्न करने के लिए विवश करता है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य की समकालीन प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि सत्ता, प्रशासन और राजनीति का चरित्र आज भी मूलतः वही है, केवल उसके रूप बदल गए हैं। नौकरशाही की जटिलता, सत्ता से निकटता की संस्कृति और मध्यवर्ग की अवसरवादी भूमिका आज भी समाज का यथार्थ है। डिजिटल युग और नए माध्यमों के बावजूद सत्ता–तंत्र की मानसिकता में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। ऐसे में श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य हमें यह समझने में मदद करता है कि व्यवस्था की समस्याएँ केवल व्यक्तियों की नहीं, बल्कि पूरी संरचना की देन हैं। उनका व्यंग्य आज के पाठक को यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम सचमुच व्यवस्था के शिकार हैं, या उसके मौन साझेदार भी। वहीं शरद जोशी के व्यंग्य की प्रासंगिकता समकालीन शहरी जीवन में और अधिक स्पष्ट दिखाई देती है। आज का मध्यवर्ग पहले से अधिक शिक्षित, तकनीक–सक्षम और जागरूक है, किंतु नैतिक स्तर पर वह उतना ही द्वंद्वग्रस्त है। नियमों को तोड़ना, सुविधा के लिए समझौता करना, आत्म–छल के माध्यम से स्वयं को सही ठहराना ये प्रवृत्तियाँ आज भी उतनी ही सामान्य हैं। शरद जोशी का व्यंग्य इस रोजमर्रा के पाखंड और आत्मसंतोष को उजागर करता है। उनका व्यंग्य यह बताता है कि व्यवस्था की विकृतियाँ केवल ऊपर से नहीं आतीं, बल्कि समाज के सामान्य नागरिक के व्यवहार से भी पोषित होती हैं।

समकालीन समाज में मीडिया और सोशल मीडिया के प्रभाव ने व्यंग्य की भूमिका को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। आज सूचनाओं की बाढ़ है, लेकिन विवेक और आत्मालोचना का अभाव भी है। व्यंग्य इस शोरगुल के बीच एक ऐसी विधा है, जो सरल भाषा में गहरी बात कह जाती है। श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का व्यंग्य हमें यह सिखाता है कि सत्ता की आलोचना तभी सार्थक है, जब वह आत्मालोचना से जुड़ी हो। अन्यथा आलोचना केवल एक सुरक्षित दूरी से किया गया नैतिक प्रदर्शन बनकर रह जाती है।

व्यंग्य की एक बड़ी समकालीन प्रासंगिकता यह भी है कि वह लोकतांत्रिक चेतना को जीवित रखता है। जब समाज में असहमति के स्वर कमजोर पड़ने लगते हैं, तब व्यंग्य प्रतिरोध का एक सभ्य और प्रभावी माध्यम बन जाता है। यह न तो हिंसक है और न ही उपदेशात्मक, फिर भी सत्ता और समाज दोनों को आईना दिखाता है। श्रीलाल शुक्ल सत्ता–तंत्र की क्रूरता और मध्यवर्ग की चुप्पी को उजागर करते हैं, जबकि शरद जोशी व्यक्ति की छोटी–छोटी कमजोरियों को सामने लाते हैं। दोनों मिलकर लोकतंत्र की आत्माकृसवाल पूछने की क्षमता को सशक्त बनाते हैं।

समकालीन भारतीय समाज में व्यंग्य की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि आज समस्याएँ अधिक जटिल और सूक्ष्म हो गई हैं। खुला शोषण कम और संस्थागत अन्याय अधिक है। ऐसे में व्यंग्य इन सूक्ष्म तंत्रों को समझने और समझाने का कार्य करता है। वह यह स्पष्ट करता है कि समाज की विडंबनाएँ केवल बाहरी दबावों का परिणाम नहीं, बल्कि हमारी सामूहिक मानसिकता की उपज भी हैं। समकालीन भारतीय समाज में व्यंग्य की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक है। श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का व्यंग्य साहित्य आज भी इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह हमें केवल समाज को देखने नहीं, बल्कि स्वयं को पहचानने का अवसर देता है। यह व्यंग्य हँसी के माध्यम से चेतना जगाता है और आत्मसंतोष की नींद में सोए मध्यवर्ग को यह याद दिलाता है कि यदि वह स्वयं नहीं बदलेगा, तो समाज का बदलना भी एक भ्रम ही रहेगा। यही व्यंग्य की स्थायी और समकालीन सार्थकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत "भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाएँः श्रीलाल शुक्ल एवं शरद जोशी के व्यंग्य में" के समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मध्यवर्ग आधुनिक भारतीय समाज की सबसे जटिल, विरोधाभासी और निर्णायक सामाजिक इकाई है। स्वतंत्रता–पश्चात् सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने इस वर्ग को शक्ति और जिम्मेदारी दोनों प्रदान की, किंतु साथ ही उसे असुरक्षा, महत्वाकांक्षा और नैतिक द्वंद्व में भी बाँध दिया। यही स्थिति मध्यवर्ग की विडंबनाओं का मूल कारण बनती है, जिसे व्यंग्य साहित्य ने अत्यंत प्रभावी ढंग से उजागर किया है।

मध्यवर्ग का सबसे बड़ा संकट उसका दोहरा चरित्र है– **आदर्शों की बात और व्यवहार में समझौता**। नैतिकता बनाम सुविधा, पाखंड बनाम आत्मसंतोष, सत्ता–विरोध बनाम सत्ता–सामंजस्य ये सभी विरोधाभास मध्यवर्गीय मानसिकता की स्थायी विशेषताएँ बन चुके हैं। मध्यवर्ग स्वयं को व्यवस्था का पीड़ित भी मानता है और उसी व्यवस्था को बनाए रखने वाला पोषक भी बन जाता है। यही आत्मविरोध उसे परिवर्तनकारी शक्ति बनने से रोक देता है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में मध्यवर्ग सत्ता, प्रशासन और राजनीति के साथ मौन समझौते करता

हुआ दिखाई देता है। उनका व्यंग्य यह स्पष्ट करता है कि सत्ता की निरंकुशता केवल शासकों की देन नहीं, बल्कि उस मध्यवर्ग की चुप्पी और अवसरवाद का परिणाम भी है, जो सुविधा के बदले नैतिक प्रतिरोध त्याग देता है। वहीं शरद जोशी के व्यंग्य में यही मध्यवर्ग रोजमर्रा के जीवन में नैतिक गिरावट, आत्म–छल और छोटे–छोटे समझौतों के माध्यम से व्यवस्था को पोषित करता दिखाई देता है। उनके यहाँ व्यंग्य अधिक आत्मीय और मनोवैज्ञानिक है, जो पाठक को सीधे स्वयं से सामना करने के लिए विवश करता है।

भाषा, शैली और व्यंग्य–शिल्प के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि जहाँ श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य व्यापक, संरचनात्मक और सत्ता–केंद्रित है, वहीं शरद जोशी का व्यंग्य सरल, तीक्ष्ण और व्यक्ति–केंद्रित है। दोनों की भिन्न अभिव्यक्ति–पद्धतियाँ मिलकर भारतीय मध्यवर्ग की विडंबनाओं को समग्रता में प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि उनका व्यंग्य केवल साहित्यिक सौंदर्य तक सीमित न रहकर सामाजिक आलोचना का सशक्त माध्यम बन जाता है। समकालीन भारतीय समाज के संदर्भ में यह निष्कर्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि व्यंग्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है। बदलते समय, तकनीक और जीवन–शैली के बावजूद मध्यवर्ग की मानसिकता में मूलभूत परिवर्तन नहीं आया है। इसलिए श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी का व्यंग्य आज भी समाज को आईना दिखाने का कार्य करता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि यह शोध मध्यवर्ग को दोषारोपण के लिए नहीं, बल्कि आत्मावलोकन के लिए आमंत्रित करता है। व्यंग्य की यही सबसे बड़ी सामाजिक भूमिका है– वह हँसी के माध्यम से चेतना जगाता है और आत्मसंतोष में डूबे समाज को यह याद दिलाता है कि बिना आत्मपरिवर्तन के किसी भी सामाजिक परिवर्तन की कल्पना अधूरी है।

संदर्भ सूचीः–

1. शुक्ल, श्रीलाल :– राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979।
2. शुक्ल, श्रीलाल :– अंगद का पाव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988।
3. जोशी, शरद :– सरल सत्य की खोज, लोकभारती प्रकाशक, वाराणसी, 1994।
4. जोशी, शरद :– अर्द्धकथाएँ, लोकभारती प्रकाशक, वाराणसी, 2002।
5. मित्र, आलोक :– हिंदी व्यंग्यः परंपरा और प्रयोग, एनी प्रकाशन, कोलकाता, 2010।
6. चतुर्वेदी, रामजी :– भारतीय मध्यवर्ग सामाजिक और आर्थिक विश्लेषण, नवा भारत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
7. सिंह, नवीन :– व्यंग्य की भाषा और विधा, भारतीय भाषा शोध परिषद्, भोपाल, 2012।
8. बुषन, अनिरुद्ध :– सोशल लैटरैसी और भारतीय लोकतंत्र, भाषाप्रकाशन, जयपुर, 2018।
9. तिवारी, सुधीर :– हिंदी साहित्यः समाज और संस्कृति, एचएमवी प्रकाशन, लखनऊ, 2009।
10. भटनागर, मधुकर :– भारतीय सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चिंतन, सोशल साइंसेज प्रेस, दिल्ली, 2016।